

है। अतएव इन्द्रियों के साथ जबर्दस्ती मत करो। यह सिद्धान्त बहुत-कुछ वैसा ही दिखता है जैसा कि आज के मनोवैज्ञानिक लोग कहते हैं।

किन्तु गांधी जी इस मार्ग को नहीं मानते। उनका भाव यह दिखता है कि यदि मनुष्य को धर्म के मार्ग पर आना है तो उसे इन्द्रिय-निग्रह करना ही होगा, क्योंकि इन्द्रियों से भिन्न मनुष्य कुछ है ही नहीं। इन्द्रियां खुलकर हरियाली चरती फिरे और मनुष्य का मन धर्म के मार्ग पर आरूढ़ रहे, यह कल्पना ही परस्पर-विरोधी है। मनुष्य के सामने दो से अधिक विकल्प नहीं हैं। या तो वह इन्द्रियों की दासता स्वीकार कर ले और जिधर-जिधर इन्द्रियां जाने को कहे, उधर-उधर भागता फिरे अथवा इन्द्रियों को वश में लाकर वह धर्म के पालन में तत्पर हो। इन्द्रियों की उल्लंघना पशु-धर्म है और जो भी व्यक्ति इन्द्रियों को अनियन्त्रित रखने का पक्षपाती है उसे यह भी मानना चाहिए कि मनुष्य पशु से भिन्न नहीं है, न पशु से अधिक दूर भागने की चेष्टा ही करनी चाहिए किन्तु जो लोग यह मानते हैं कि मनुष्य पशु से भिन्न प्राणी है उन्हें इन्द्रिय-निग्रह को माने बिना चारा नहीं है क्योंकि इन्द्रियों को नियंत्रण में रखकर ही मनुष्य पशुता से दूर जा सकता है। इन्द्रियों का उद्दाम नृत्य पशुता का प्रणाम है। **इन्द्रियों को धार में बांधकर चलाना ही मनुष्यता है, मनुष्य की संस्कृति है।**

नर-नारी का पारस्परिक सम्बन्ध सदा से विवाद का विषय रहा है। सच पूछिये तो नारी गृहस्थ दोनों के पद-मर्यादा में वृद्धि हुई है किन्तु अपने देश में तो वैदिक काल को छोड़कर प्रायः सदैव निवृत्ति का ही बोलबाला रहा। अतएव नारी की मर्यादा यहां सदैव दबी रही। समाज में प्रतिष्ठा उनकी थी जो वैयक्तिक मुक्ति के लिए वैराग्य ले लेते थे। नारी वैरागियों के किसी काम की चीज नहीं थी। अतएव सभी सन्त उसे पाप की खान बताते गये। बुद्ध और महावीर ने भिक्षुणी होने का अधिकार देकर नारियों को नरों के समकक्ष अवश्य माना, किन्तु जिस कारण नारी पाप की खान मानी जाती है उसका विलाप भी दोनों धर्मों में मिलता है। नारियों को भिक्षुणी होने का अधिकार देकर बुद्ध ने विलाप किया— “आनन्द! जो धर्म मैंने चलाया था, वह पांच सहस्र वर्ष तक चलने वाला था, किन्तु अब वह केवल पांच सौ वर्ष चलेगा क्योंकि नारियों को मैंने भिक्षुणी होने का अधिकार दे दिया है।” और हुआ भी यही। बुद्ध के पांच सौ वर्ष बाद ही महायान सम्प्रदाय निकला यद्यपि इसका दायित्व केवल भिक्षुणियों पर नहीं था और बौद्ध-मत धीरे-धीरे हिन्दुत्व के गोद में लौटने लगा।

ठीक इसी समय जैनों में दिगम्बर-सम्प्रदाय का प्रवर्तन हुआ जिसके आचार्यों ने मुनि-धर्म में यह संशोधन उपस्थित कर दिया कि नारियों को भिक्षुणी होना व्यर्थ है क्योंकि पुरुष-योनि में जन्में बिना उन्हें मुक्ति नहीं मिलेगी। **कबीर**

आदि संतों ने विवाह करके यह दिखाना अवश्य चाहा था कि गृहस्थ-जीवन धर्म-साधना का बाधक नहीं है, न नारी धर्म की शत्रु है। किन्तु, निवृत्ति-भाव कबीर में भी था। विवाह करके अपना पाश्चात्य उन्होंने भी लिखा है।

इसके विपरीत पाश्चात्य जगत में जन्मे हुए उदार विचारों का यह परिणाम हुआ कि नारी अपनी स्वाधीनता के लिए संघर्ष करने लगी और नारी के जागते ही पुरुष इस ग्लानि से भर गया कि सम्पूर्ण इतिहास में नारी पर अत्याचार ही करता आया है। स्वतन्त्रता का वास्तविक अर्थ आर्थिक स्वाधीनता है। नारी जब तक यह स्वाधीनता प्राप्त नहीं करती, उसका यह दावा झुठा है कि वह स्वतन्त्र है किन्तु पुरुष यह नहीं चाहता है कि नारी आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र हो। पुरुष का कामुक संस्कार इस बात को बर्दास्त नहीं कर सकता कि नारियां खेतों में जायें, कारखाने में काम करें और इस प्रकार अपने रंग को मद्धिम एवं अपनी चमड़ी को खुरदुरी बना लें। इसलिए पुरुष कहता है, “मेरी महीने भर की कमाई तुम्हारे चरणों पर अर्पित है। तुम जिस तरह चाहो, खर्च करो। खेतों ओर कारखानों में जाने की तुम्हें आवश्यकता क्या है? और प्रत्येक देश में नारी इस उत्कोच को सहर्ष स्वीकार कर रही है। वह मग्न है यह प्रशस्ति सुनकर कि नारी रूप है, नारी सुधा और चांदनी है, नारी पुरुष के गले में मदार की माला है, उसके बाहों में झूलती हुई जूही की लड़ी है।

कवियों और दार्शनिकों ने भी नारी को एक उत्कोच यह कहकर दिया है कि वह पुरुष की प्रेरणा की उत्स है, नारी का प्रेम पाकर मनुष्य बड़े-बड़े काम कर डालता है। वह नारी समस्या का समाधान नहीं है। नारियां यह सुनकर प्रसन्न क्यों होती हैं कि वे पुरुषों की प्रेरणास्रोत हैं, उनकी शक्ति और प्रताप के केन्द्र हैं? क्या नारियों का सारा जीवन केवल पुरुषों को प्रेरित करने के लिए है? क्या उनका अपना कोई ध्येय नहीं हो सकता? क्या नरों के समान नारियों को अपने व्यक्तित्व का स्वतन्त्र विकास नहीं करना है? और यदि उनका जन्म पुरुष में प्रेरणा भरने को है तो क्या वे आत्म-विकास के लिए पुरुषों से वैसे ही प्रेरणा पाने का दावा नहीं कर सकती? ये प्रश्न हैं, जिनका समाधान नारियों को खोजना चाहिए किन्तु सदियों के कुसंस्कारों के कारण नारियों का ध्यान इस ओर नहीं जा रहा है। हालांकि अब नारियां अपने अधिकारों के प्रति दिन-पर-दिन जागरूक हो रही हैं— इससे इन्कार नहीं किया जा सकता है।

किन्तु आज के पहले युद्ध रोकने रोकने और वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाने के कामों में नारियों की दिलचस्पी नहीं दिखती थी। वे पुरुष-प्रदर्शनी आयोजित करती थीं और बन-बनकर समाज में सुरभि बिखेर कर अपने अस्तित्व की सार्थकता को समाप्त मान लेती थीं।

हमारा विचार है कि नर-नारी के सम्बन्धों पर जैसा निश्चित निदान गाँधी जी और मार्क्स ने दिया है वैसा और कोई विचारक नहीं दे सका। ये दोनों नेता नर-नारी को सहज एवं सम्मान की दृष्टि से देखते हैं और यह मानते हैं कि जिस क्षेत्र में एक की विजय है, उसमें दूसरे को भी विजय मिल सकती है। खेत और कल-कारखानें, ये दोनों के क्षेत्र हैं। ज्ञान और विज्ञान, इन पर भी दोनों का समान अधिकार है। प्रकृति ने नर और नारी की रचना एक ही तत्व से की है, अतएव, एक के लिए जो सहज और सम्भाव्य है, वह दूसरे के लिए भी असम्भव नहीं हो सकता। हां, मातृत्व एक ऐसा गुण अवश्य है जिसके कारण नारी नर से भी श्रेष्ठ हो जाती है।

गाँधी और मार्क्स में फर्क यह है कि भौतिकवादी होने के कारण मार्क्स को अपने समाधान पर पहुंचने में कठिनाई नहीं हुई। नर-नारी के बीच जिन कारणों से प्राचीन सन्त और सुधारक भय की स्थिति देखते थे, उन कारणों को मार्क्सवादी मानते ही नहीं। इसलिए विवाह उनकी दृष्टि में अनिवार्य संस्था नहीं है, न ब्रह्मचर्य, पतिव्रता अथवा एक पत्नीव्रत को ही वे जीवन का कोई दुर्लभ गुण मानते हैं।¹ और स्पष्ट ही इन परम्परागत मूल्यों से यदि हम आंखें मूंद लें तो मार्क्सवादी समाधान नर-नारी समस्या का पूरा समाधान है।

किन्तु, गाँधी इन मूल्यों से आंखें नहीं मूंद सकते। यदि वे आंखें मूंद लें तो उनका सारा दर्शन, पृथ्वी को स्वर्ग बनाने की उनकी सारी कल्पना क्षण में ढह पड़ेगी। मनुष्य के सुधार का मार्ग सत्य और अहिंसा का मार्ग है और सत्य एवं अहिंसा का सम्यक् पालन काम को नियंत्रित किये बिना नहीं हो सकता। गाँधी जी के भीतर प्राचीन परम्परा के सन्त और आधुनिक विचारक दोनों विद्यमान हैं। विचारक का कहना है कि नर और नारी के सम्बन्ध को स्वाभाविकता प्रदान करो। सन्त को भय है कि स्वाभाविकता के प्रचलित अर्थ से तो दोनों काम के दास हो जायेंगे और दोनों में सत्य एवं अहिंसा की भावना दुर्बल पड़ जायेगी। इसलिए गाँधी मध्य मार्ग पर आते हैं। उनका कहना है कि नर और नारी दोनों का अस्तित्व एक-दूसरे से स्वतन्त्र है और दोनों अपने-अपने व्यक्तित्व का विकास करने को जन्म लेते हैं। यदि रूप, सौन्दर्य तथा आधिभौतिक सुखों के लोभ में आकर वे एक-दूसरे से मिलते हैं तो यह ऊँचा मिलन नहीं है।² व्याकुलता तो दोनों में आत्म विकास के लिए ही होनी चाहिए जिसका समाज-सेवा और स्वार्थ-त्याग है। हाँ, विचारों में एकता अथवा उद्देश्य में समानता होने के कारण वे एक-दूसरे के समीप आना चाहें तो विवाह भी कर सकते हैं। किन्तु विवाह के उपरान्त बाल-बच्चे उत्पन्न करना कोई ऊँचा ध्येय नहीं है। एक तो इससे जनसंख्या में अनुचित वृद्धि होती है, दूसरे बाल-बच्चे की वृद्धि से समाज-सेवा की सेवा की योग्यता न्यून पड़ जाती है। अतएव नर-नारी को या तो विवाह ही नहीं करना चाहिए अथवा करना

अनिवार्य हो तो दोनों का आनन्द बौद्धिक मिलन अथवा आध्यात्मिक समीपता का आनन्द होना चाहिए। बस, इतनी सी शर्त लगाकर गाँधी जी नर-नारी को स्वतन्त्र छोड़ देते हैं और उन्हें परस्पर समकक्ष भी मानते हैं।

गाँधी जी प्रत्येक कर्म का मूल्य इस कसौटी पर आंकते हैं कि उससे मुक्ति में सहायता मिलती है या नहीं। विवाह मुक्ति में सहायक नहीं है इसलिए वे विवाह को अनावश्यक मानते हैं। उनकी मान्यता है कि मुक्ति से दूर रहने के कारण मनुष्य का पुनर्जन्म होता है तथा मुक्ति से और अधिक दूर रहने के कारण वह विवाह करता है। नर-नारी दोनों समान हैं और दोनों को चाहिए कि अपने मोक्ष के लिए साधना करें। बहुत प्राचीन काल से लोग जो यह कहते आये थे कि नर और नारी परस्पर एक-दूसरे के पूरक हैं, उस सिद्धान्त का गाँधी जी और मार्क्स दोनों ने प्रयोगों द्वारा खण्डन कर दिया है।

नर और नारी विषयक गाँधी जी की धारणा ठीक उसी तरह कोरी कल्पना है जिस प्रकार गाँधी जी का राम राज्य की कल्पना अथवा प्लेटो का आदर्श राज्य की कल्पना जिसमें प्लेटो ने समाज का वर्गीकरण करते हुए औरतों के साम्ययीकरण की बात कह डाली। गाँधी जी जब नारियों के सम्बन्ध में मुक्ति की बात करते हुए विवाह को अनावश्यक अडंगा मानते हैं तो गाँधी जी स्वयं इसके मरीज क्यों हो गये? गाँधी जी को बचपन में ही इसका भान हो जाना चाहिए था कि शादी-विवाह जीवन की गाड़ी को मोक्ष तक नहीं पहुंचायेगी और उनको प्रवृत्ति मार्ग के बजाय निवृत्ति मार्ग ग्रहण कर लेना चाहिये था। जो स्वयं विवाह के बंधन से मुक्त नहीं हो पाया, वह दूसरों को मोक्ष की प्राप्ति के लिए ऐसी शिक्षा या उपदेश देने का कैसे अधिकारी हो सकता है? जब महात्मा बुद्ध और महात्मा महावीर निवृत्ति मार्ग को अपनाये तो भिक्षुणियों को संघ में शामिल करने पर उन्हें कोई परहेज नहीं हुआ। तब गाँधी ऐसा कठोर शर्त कैसे लगा देते हैं— इसमें संशय के साथ ही आश्चर्य भी होता है।

सन्दर्भ—

1. हरिजन, 21 जुलाई, 1946
2. नवजीवन, 5 जून, 1924
3. बोस, सेलेक्शन्स फ्रॉम गाँधी, पृ0— 23
4. नवजीवन, 5 जून, 1924
5. मार्क्स, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, पृ0— 81
6. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, 15 ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, 2004, पृ0—544
7. वही, पृ0— 546

